International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 773-774

वैदिककालिक शिक्षा की स्थितिः एक परिशीलन

क्षमा
गवेषिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय शिक्षा का उद्भव वेदों से माना जाता है। परन्तु वेद कितने प्राचीन हैं, इसके विषय में इदमित्थं कुछ भी नहीं कहा जा सकता। आर्ष परम्परा के अनुसार वेदअपौरूषेय हैं अर्थात् यह किसी की रचना नहीं है। आदिकाल में वेदों के ज्ञान को लिपिबद्ध नहीं किया गया था। बाद में समय के साथ–साथ ऋषियों ने इसके ज्ञान को लिपिबद्ध किया। वेद के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ग्रहण किया जाता है, इसे 'वेदत्रयी' के नाम से भी जाना जाता है। इनको व्याख्यायित करने के लिये बाद में जो साहित्य लिखे गये जैसे–ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थवेद, छह वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष और निरुक्त) वृहद्देवता और अनुक्रमणिकाएँ इन सबका अन्तर्भाव वैदिक साहित्य के अन्तर्गत कर किया जाता है।

जहाँ तक वैदिककालिक शिक्षा की स्थिति का प्रश्न है? इस विषय पर कहा जा सकता है कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जिस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग किया जाता है, वैदिककाल में इसके लिये 'विद्या' शब्द प्रयुक्त हुआ है। विद्या परा और अपरा नाम से दो प्रकार की थी। उपनिषद् को परा तथा शेष को अपरा विद्या माना गया है। गीता में कहा गया है–

> ''अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।''[1]

वैदिककाल में शिक्षा के दो स्तर थे– प्राथमिक शिक्षा और औपचारिक शिक्षा। बालकों को प्राथमिक शिक्षा घर पर तथा औपचारिक शिक्षा गुरुकुल या आश्रम में दी जाती थी। गुरुकुल किसी राज्य के अधीन न होकर स्वतन्त्र संस्था थी। जिसकी सुरक्षा का दायित्त्व राज्य का होता था। आचार्यगण गुरुकुल के प्रधान होते थे। गुरुकुल में प्रवेश पाने के लिये बालकों का उपनयन संस्कार किया जाता था। जिसके बाद उन्हें 'अन्तेवासी' की संज्ञा मिलती थी। अथर्ववेद में 'अन्तेवासी' शब्द के रहस्य को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है– ''बालक को शिक्षित करने के लिए स्वीकार करते हुए गुरु इस प्रकार सुरक्षित तथा संभाल कर रखता है, जैसे माँ उसे अपने गर्भ में रखती है।[2]

यद्यपि उस काल में शूद्रों का उपनयन संस्कार नहीं होता था। इसलिये उन्हें शिक्षा से वंचित रहना पड़ता थ। शिक्षण कार्य ब्राह्मण के अधीन था। ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त में 'शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः' कहकर शिक्षक को शाक्त शब्द से सम्बोधित किया गया है।[3] काठक संहिता में आचार्य को ब्रह्मचारी का प्रजापति बताया गया है।[4] उस काल में दो प्रकार के ब्रह्मचारी का उल्लेख मिलता है। एक वह जो गुरुकुल में विद्या प्राप्त करके घर वापस आ जाते थे। दूसरे वह जो जीवनपर्यन्त गुरुकुल में रहकर गुरु और आश्रम की सेवा करते थे।[5] आश्रम में विद्यार्थी के अन्दर ऊँच–नीच, भेद–भाव जैसी हीनभावना को दूर करने के लिये गुरू की सेवा, भिक्षाटन, समिधा लाना, जंगल में प्रतिदिन जाना इत्यादि को नित्यकर्म का अभिन्न अङ्ग बना दिया गया था। और जो ब्रह्मचारी इन नित्यकर्मों से विमुख होता था, उसे दण्डस्वरूप ब्रह्मचारी पद से च्युत कर दिया जाता था। केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में ही उसे इन नित्यकर्मों से छूट मिलती थी।

शिक्षक और विद्यार्थी के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ और मधुर थे। विद्यार्थी शिक्षक के प्रति सम्मानपूर्वक दृष्टिकोण रखते थे तथा शिक्षक भी अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्णतः समर्पित थे। दोनों एक–दूसरे के कल्याण के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते थे। कठोपनिषद् में कहा गया है–

ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।[6]

अर्थात् वह परमात्मा हम (आचार्य और शिष्य) दोनों की साथ–साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ–साथ पालन करें। हम साथ–साथ विद्यासम्बन्धी सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनों का पढ़ा हुआ तेजस्वी हो। हम द्वेष न करें।

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी कहा गया है–

> तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।[7]

अर्थात् तुम मेरी रक्षा करो तथा ब्रह्म का निरूपण करने वाले आचार्य की भी रक्षा करो। मेरी रक्षा करो और वक्ता की रक्षा करो।

उस काल में विद्या को संहिता के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। इसका प्रमाण तैत्तिरीयोपनिषद् के इस मन्त्र से मिलता है–

> अथाधिविद्यम्। आचार्यःपूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्।विद्या संधिः। प्रवचनं संधानम्। इत्यधिविद्यम्।[8]

अर्थात् अधिविद्य दर्शन कहा जाता है– इसकी संहिता का प्रथम वर्ण आचार्य है। अन्तिम वर्ण शिष्य है, विद्या सन्धि है और प्रवचन सन्धान है। यह विद्या सम्बन्धी दर्शन कहा गया है।

शिक्षा का स्वरूप पूर्णतः मौखिक था। गुरू के द्वारा दिये गये ज्ञान को विद्यार्थी घ्यान से सुनता और उसका मनन करता था। बृहदारण्यकोपनिषद् में 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो'[9] के द्वारा सुनना, उसका चिन्तन करना और निदिध्यासन करने का विधान किया गया है। आश्रम में शिक्षा के दो चरण थे। पहले चरण में बालकों को मन्त्रों और श्लोकों को कण्ठस्थ कराया जाता था तथा दूसरे चरण में वेदों, पुराणों, धर्मशास्त्रों और अनेक प्रकार की विधाओं इत्यादिकी शिक्षा दी जाती थी। किन्तु आचार्य द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी का परीक्षा लेने के पश्चात् ही उसे दूसरे चरण में प्रवेश दिया जाता था। उस काल में किसी भी परीक्षा प्रणाली या उपाधि का प्रचलन नहीं था। गुरू द्वारा दिये गये ज्ञान को अक्षरशः गुरू को बताना और गुरू की संतुष्टि ही शिष्य की परीक्षा कहलाती थी।

आश्रम या गुरुकुल में विद्यार्थी को विविध प्रकार की शिक्षा दी जाती थी किन्तु आध्यात्मिक और व्यावहारिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था। आश्रम नगर से दूर एकान्त वातावरण में प्रकृति की गोद

में स्थित होते थे। विद्यार्जन के पश्चात् शिष्य गुरु को अपनी सामर्थ्य अनुसार गुरुदक्षिणा देता था। मनुस्मृति में उन पदार्थों की सूची दी गयी है जो गुरुदक्षिणा के रूप में दी जा सकती थी।[10] गुरु शिष्य को उसके भावी जीवन के कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए उसे अन्तिम उपदेश देता था। ''सत्यं वद।धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमादितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि।

नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेन्यां सो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिनया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्।।

ये तत्र ब्राह्मणः संमार्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथ तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।।''[11]

अर्थात् 'सत्य बोल।धर्म का आचरण कर। स्वाध्याय से प्रमाद न कर। आचार्य के लिये अभीष्ट धन लाकर सन्तान–परम्परा का छेदन न कर। सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिये। धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। कुशल कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। ऐश्वर्य देने वाले माङ्गलिक कर्मों से प्रमाद नहीं करना चाहिये। स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिये।। देवकार्य और पितृकार्यों से प्रमाद नहीं करना चाहिये। तू मातृदेव हो, पितृदेव हो, आचार्य देव हो और अतिथिदेव हो। जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिए– दूसरों का नहीं। हमारे (हम गुरुजनों को) जो शुभ आचरण हैं तुझे उन्हीं की उपासना करनी चाहिये।। दूसरे प्रकार के कर्मों की नहीं। जो कोई (आचार्यादि धर्मों से युक्त होने के कारण) हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं उनका आसनादि के द्वारा तुझे आश्वासन करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक देना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये। अपने ऐश्वर्य के अनुसार देना चाहिये। लज्जापूर्वक देना चाहिये। भय मानते हुए देना चाहिये। संवित्–मैत्री आदि कार्य के निमित्त से देना चाहिये। यदि तुझे कर्म या आचार के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो।। तो वहाँ जो विचारशील, कर्म में नियुक्त, आयुक्त, अरूक्ष एवं धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, उस प्रसङ्ग में वे जैसा व्यवहार करें वैसा ही तू भी कर। इसी प्रकार जिन पर संशययुक्त दोष आरोपित किये गये हों उनके विषय में, वहाँ जो विचारशील, कर्म में नियुक्त अथवा आयुक्त, सरल हृदय और धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, वे जैसा व्यवहार करें तू भी वैसा ही कर। यह आदेश–विधि है, यह उपदेश है, यह वेद का रहस्य है और (ईश्वर की) आज्ञा है। इसी प्रकार तुझे उपासना करनी चाहिये– ऐसा ही आचरण करना चाहिये।'

वैदिककाल में उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये परिषद् या विदथ[12] नामक संस्था का उल्लेख मिलता है। यह संस्था उन लोगों के लिए होती थी जो विद्यार्थी जीवन के बाद शेष बचा जीवन ज्ञान और सत्य की खोज करने में लगाते थे। यहाँ शिक्षा का स्वरूप शास्त्रार्थ था। विदथ में दूर–दूर से विद्वान् शास्त्रार्थ करने के लिये आते थे। उद्दालक, श्वेतकेतु, याज्ञवल्क्य इत्यादि उस काल के प्रसिद्ध विद्वान थे। शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिये वजिन्[13] नामक संस्था का विवरण प्राप्त होता था। ये संस्था राजा–महाराजाओं द्वारा आयोजित की जाती थी। जिसमें शास्त्रार्थ करने के लिये देश–विदेश के बड़े–बड़े विद्वान् भाग लेने आते थे। इसमें विजय प्राप्त करने वाले विजेता को राजा सम्मानित करता था।

उस काल में शिक्षा के लिये गुरुकुल में जाने की अनिवार्यतः नहीं थी। यदि परिवार का कोई सदस्य शिक्षा देने में सामर्थ्य था, तब बालक को घर पर ही शिक्षा दी जा सकती थी। समाज में आचार्य और ब्रह्मचारी को राजा के समान ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वह जिस जिस घर के सामने भिक्षा मांगने जाते थे, उस घर के सदस्य अपने आप को धन्य समझते थे।

इस प्रकार वैदिक काल में शिक्षा अपनी समुन्नत स्थिति में थी। आधुनिक शिक्षा प्रणाली, वैदिककालीन शिक्षा से सर्वथा भिन्न दृष्टिगोचर होती है। पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति की अन्धानुकरण में वर्तमान शिक्षा प्रणाली से उत्पन्न हुई अनेकानेक समस्याएँ जैसे– अनुशासनहीनता, छात्र असंतोष, भेदभाव की भावना, भाषायी समस्याएँ, राष्ट्रीय विघटन, सामाजिक बुराईयाँ, और निर्धनता इत्यादि का काफी हद तक समाधान वैदिककालीन शिक्षा के मूलभूत आदर्शों जैसे–श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आदर, आत्म–अनुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य और नैतिक बल आदि को अपनाकर किया जा सकता है। वर्तमानकालिक शिक्षा प्रणाली में सनातनकालीन शिक्षा के आदर्शों का समावेश करने में भारतवर्ष पुनः एक बार फिर से विदेशी छात्रों को अपनी ओर आकर्षित करके शिक्षा के क्षेत्र में अपने गौरव को फिर से महिमामण्डित कर सकेगा। डॉ0 लक्ष्मण स्वामी मुदालियर ने ठीक ही कहा है–

''हमारे युवा भारतीयों को उस विरासत को पहचानने दो जो उनकी अपनी है। ईश्वर करे कि युवा पीढ़ी भारत की वास्तविक आत्मा को पहचाने तथा अपने सभी कार्यों में उसका अनुसरण करें।''

Let our young Indian's realise the heritage that is theirs. May the young generation imbibe the true spirit of India and follow it in all their endeavours.

संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 7/5
2. आचार्य उपनयनमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः तं रात्रीस्तिस्त्रः उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।–अथर्ववेद 11.3.5
3. ऋग्वेद 7.103.5
4. आचार्यो ब्रह्मचारिणः प्रजापतिः।–काठक संहिता, 51.6, 138.23
5. त्रयो धर्मस्य स्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति। प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचर्याचर्याकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्।–छान्दोग्य उपनिषद् 2.23.1
6. कठोपनिषद्, शान्तिपाठ।
7. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.1
8. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.2.3
9. वृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5
10. मनुस्मृति अध्याय–2.245–246
11. तैत्तिरीयोपनिषद्–1/11/1–4
12. ऋग्वेद
13. ऋग्वेद